SHODH SAMAGAM

ISSN : 2581-6918 (Online), 2582-1792 (PRINT)

चरित्र निर्माण की शिक्षा और स्वामी विवेकानंद

बिक्रम कुमार दास, शोधार्थी, शिक्षा विभाग, मानविकी एवं सामाजिक विज्ञान संकाय
साई नाथ विश्वविद्यालय, राँची, झारखण्ड, भारत

ORIGINAL ARTICLE

Author

बिक्रम कुमार दास, शोधार्थी

E-mail : bikram241070@gmail.com

shodhsamagam1@gmail.com

Received on : 18/01/2025
Revised on : 19/03/2025
Accepted on : 28/03/2025
Overall Similarity : 03% on 20/03/2025

शोध सार

सामाजिक संरचना में शिक्षा का प्रथम उद्देश्य है मानव का चरित्र गठन। ध्यातव्य है कि न केवल भारतीय वरन् विदेशीय परम्परा के अन्तर्गत शिक्षा को चरित्र गठन का प्रथम उद्देश्य स्वीकार करने की प्रवृति प्रभावी रही है। वैदिककालीन शिक्षा का सर्वोच्च लक्ष्य मानव का चरित्र निर्माण करना ही था। अतः सरल जीवन, न्यून आवश्यकताओं का अभ्यास, सदाचार, सत्याचरण, अहिंसात्मक व्यवहार, इत्यादि उनके दैनिक जीवन के स्वाभाविक अंग थे। विवटीलियन ने नैतिकता और चरित्र गठन पर बहुत बल दिया था, क्योंकि वह जानते थे कि रोमी समाज का पतन नैतिकता के अभाव में होगा। वूल्जे का इस संदर्भ में स्पष्ट कथन रहा है "संसार में न तो धर्म का प्रभुत्व है और न बुद्धि का प्रभुत्व होता है, चरित्र और बुद्धि के साथ उच्च पवित्रता का।" यहाँ दो तथ्य महत्त्वपूर्ण है। प्रथमतः शिक्षा का उद्देश्य चारित्रिक विकास है तथा द्वितीयतः चरित्र का विकास नैतिकता के धरातल पर अवस्थित है। हरबार्ट ने इन्हीं तथ्यों की पुष्टि में इस सत्य को उद्घाटित किया है कि शिक्षा की सम्पूर्ण चेष्टा का फल एक शब्द में 'नैतिकता' है। नैतिकता ही जीवन का सबसे बड़ा मूल्य है तथा आंतरिक स्वतंत्रता का द्योतक है। अतः शिक्षा का लक्ष्य नैतिकता और चारित्रिक गठन में निहित है। प्रश्न उठता है कि चरित्र क्या है? उत्तर के संदर्भ में यहाँ ए. एल. रोबक का स्पष्टीकरण महत्त्वपूर्ण है। किसी भी व्यक्ति के सैकड़ों पृथक–पृथक कामों, हजारों स्वतंत्र आदतों या प्रवृतियों का नाम चरित्र नहीं है, अपितु चरित्र उन थोड़े से नियामक सिद्धान्तों का नाम है, जो संयम की प्रक्रिया के द्वारा मनुष्य की सहज प्रवृत्ति पर अंकुश रखते है। सत्य यह है कि चरित्र में मानव की अनेक सारी प्रवृत्तियों का एकीकरण हुआ करता है, जिससे एक क्रियात्मक पूर्णता प्राप्त होती है। इस आधार पर स्वामी विवेकानन्द के अनुसार कहा जा सकता कि मनुष्य का चरित्र उसकी विभिन्न प्रवृतियों की समष्टि है, उसके मन के

समस्त झुकावों का योग है। सुख और दुःख ज्यों–ज्यों उसकी आत्मा पर से होकर गुजरते है, वे उस पर अपनी–अपनी छाप या संस्कार छोड़ जाते हैं और इन सब विभिन्न छापों की समष्टि ही मनुष्य का चरित्र कहलाता है।

मुख्य शब्द

चरित्र निर्माण, नैतिकता, बुद्धि, संस्कार.

स्वामी विवेकानन्द की दृष्टि में चरित्र–गठन में शिक्षा के क्रम में जो प्रथमतः अपेक्षित है, वह है–अच्छे विचार के संदर्भ में प्रभावी सबलता का ज्ञान। स्वामी विवेकानन्द की दृष्टि में मनुष्य का निर्माण उसके विचारों के आधार पर होता है। यही कारण है कि शिक्षा के संदर्भ में इनके विचार में यहाँ जो महत्त्वपूर्ण अपेक्षित है, वह है–विचारों के संबंध में पूर्ण सावधानीपूर्णता। इनका स्पष्ट कथन हैः "हम वही हैं, जो हमारे विचारों ने हमें बनाया है। प्रत्येक विचार हमारे शरीर पर, लोहे के टुकड़े पर हथौड़े की हल्की चोट के समान है और उसके द्वारा हम जो बनना चाहते हैं, बनते जाते हैं। सत्य यही है कि मनुष्य के मन में प्रत्येक विचार उसके शरीर और मस्तिष्क की विकास का एक कदम है। विचारों में बड़ी शक्ति होती है। अच्छे और बुरे दोनों ही प्रकार के विचार शरीर और मस्तिष्क पर प्रभाव डालते हैं। अतः यहाँ जो महत्त्वपूर्ण है, वह है अच्छे विचार के अभिग्रहण में मनुष्य की आत्मिक शैक्षणिक सबलता। उन्होंने स्पष्ट शब्दों में कहा हैः "जिन्हें हम भूलें या अशुभ कहते हैं वह हम दुर्बल होने के कारण करते हैं, और हम दुर्बल अज्ञानी होने के कारण हैं–हमें किसने अज्ञानी बनाया है? स्वयं हमने। हमलोग स्वयं अपनी आँखों पर हाथ रखकर (अशिक्षा के कारण) अंधेरा–अंधेरा चिल्लाते है। हाथ हटा लो और प्रकाश हो जाएगा देखोगे कि मानव का प्रकाश स्वरूप आत्मा के रूप में सदा विद्यमान रहता है। तुम्हारे आधुनिक वैज्ञानिक क्या कहते है, यह क्यों नही देखते है? इस विकास का क्या कारण है? वासना–इच्छा। पशु कुछ करना चाहता है, किन्तु परिवेश को अनुकूल नहीं पाता, और इसलिए वह एक नूतन शरीर धारण कर लेता है। तुम निम्नत्तम जीवाणु अमीबा से विकसित हुए हो। अपनी इच्छा शक्ति का प्रयोग करते रहो, और भी अधिक उन्नत हो जाओगे। इच्छा सर्वशक्तिमान है। तुम कहोगे, यदि इच्छा सर्वशक्तिमान है, तो हर बात क्यों नहीं कर पाता ? उत्तर यह है कि तुम जब ऐसी बात करते हो, उस समय केवल अपने क्षुद्र की ओर देखते हो। सोचकर देखो, तुम क्षुद्र जीवाणु से इतने बड़े मनुष्य हो गए। किसने तुम्हें मनुष्य बनाया? तुम्हारी इच्छा शक्ति ने ही। यह इच्छा–शक्ति सर्वशक्तिमान है–तुम क्या यह अस्वीकार कर सकते हो ? जिसने तुम्हें इतना उन्नत बना दिया, वह तुम्हें और भी उन्नत कर सकती है। तुम्हें आवश्यकता है चरित्र की और इच्छा शक्ति को सबल बनाने की। सत्य यह है कि मानव का चरित्र–गठन झंझावत नहीं है, मानव जीवन में प्रभावी सुख और दुःख मानव के चरित्र–गठन में उपादान की भूमिका का निर्वाह करते हैं। स्वामी विवेकानन्द की इस शिक्षा के प्रति स्पष्ट उन्मुखता है, और यही कारण है कि इस शिक्षा को सार्थक रूप में अभिव्यक्त करते हुए उन्होंने स्पष्ट शब्दों में कहा है "(मानव के) चरित्र गठन में सुख और दुःख, दोनों ही समान रूप से उपादान स्परूप हैं। चरित्र को एक विशिष्ट ढाँचे में ढालने में शुभ और अशुभ, दोनो का समान अंश रहता है, और कभी–कभी तो दुःख सुख से भी बड़ा शिक्षक हो जाता है। यदि हम संसार के महापुरुषों के चरित्र का अध्ययन करें, तो मैं कह सकता हूँ कि अधिकांश दृष्टान्तों में हम यही देखेंगे कि सुख की अपेक्षा दुःख ने, तथा सम्पत्ति की अपेक्षा दारिद्रय ने ही उन्हें अधिक शिक्षा दी है एवं प्रशंसा की अपेक्षा आघातों ने ही उनकी अंतस्थ अग्नि को अधिक प्रस्फुटित किया है।'' स्वामी विवेकानन्द की दृष्टि में चरित्र गठन का जो तीसरा तत्त्व प्रमुख है, वह है कर्म। अतः उत्कृष्ठ समाज की संरचना में यह शिक्षा भी प्रभावी संघटक है कि मानव का चरित्र, जो सामाजिक संरचना का नियामक तत्त्व है, वास्तव में कर्म का परिणाम रूप है। कर्म संस्कार से प्रादुर्भूव है तथा संस्कार मनुष्य की जन्मजात प्रवृत्ति है, स्वामी विवेकानन्द की दृष्टि में यदि मानव मानस् को तालाब की मान्यता प्रदान की जाए तो हमें सदैव ध्यान रखना होगा कि इस तालाब का प्रत्येक लहर जब दब अथवा समाप्त हो जाती है तो यथार्थतः उसकी सम्पूर्ण विनष्टता नहीं होती, बल्कि यथार्थ के घरातल पर यह चित्त में एक प्रकार का चिन्ह छोड़ जाती है तथ ऐसी सम्भावना का निर्माण कर जाती है जिससे वह लहर दुबारा उठ सकें स्वामी विवेकानन्द ने यहाँ प्रदर्शित किया है कि इस सत्य की शिक्षा आवश्यक है कि प्रत्येक मानव कार्य, उसका प्रत्येक अंग संचालन, उसका प्रत्येक विचारमानव–चित्त पर इसी प्रकार

का एक संस्कार छोड़ जाता है। इन संस्कारों के संदर्भमें यह अति महत्त्वपूर्ण है कि ये संस्कार भले ही ऊपरी दृष्टि से स्पष्ट न हो तथापि इस सत्य से इनकार नहीं किया जा सकता कि अज्ञात रूप से अन्दर ही अन्दर कार्य करने में विशेष प्रबल होते है। मानव प्रति मुहूर्त के अन्तर्गत जो कुछ भी है, यथार्थ के धरातल पर वह इन संस्कारों के द्वारा ही नियमित होता है। यहाँ जिस सत्य की शिक्षा महत्त्वपूर्ण है, वह यह कि यदि शुभ संस्कारों की प्राबल्यता रहती है तो निश्चित उस स्थिति में मनुष्य का चरित्र अच्छा होता है तथा इसके विपरीत जब अशुभ संस्कारों की प्राबल्यता रहती है तो वैसी स्थिति में बुरा। यहाँ जो महत्त्वपूर्ण है वह इस तथ्य की शिक्षा कि यदि ऐसी स्थिति रहती है कि मनुष्य निरन्तर बुरा शब्द सुनता रहता है, बुरे विचारों का चिन्तन करता है, बुरे कर्मों का सम्पादन करता है तो वैसी स्थिति में मनुष्य का मन निश्चित रूप से बुरे संस्कारों का परिपूर्ण रूप हो जाता है तथा ऐसी स्थिति मनुष्य के ज्ञान के बिन ही उसके संस्कार उसके समस्त विचारों तथा कार्यों पर अपना प्रभाव डालने की दिशा में समर्थ होते हैं। सत्य यह है कि ये बुरे संस्कार निरन्तर अपना कार्य करते हैं। ये संस्कार यथार्थ में मानव के अन्दर दुष्कर्म करने की प्रबल प्रवृति उत्पन्न करते हैं। और ऐसी स्थिति में मानव और कुछ नहीं बल्कि इन संस्कारों के हाथ एक यन्त्र बन कर रह जाता है। वस्तुतः शिक्षा की प्रक्रिया मे चरित्र विकास कैसे होता है? इस प्रश्न का उत्तर स्वामी विवेकानन्द ने अप्रतिम ज्ञान के आधार पर दिया है। स्वामी विवेकानन्द की दृष्टि में सत्य की नींव पर इस शिक्षा का अस्तित्व है कि बहुत दिनों तक संघद्विचार रखने से ससंकल्प उत्पन्न होते है तथा ससंकल्पों से ऐसी आत्मशक्ति का निर्माण होता है जो विरोधी परिवेश में व्यक्ति को शुभमार्ग पर चलने की प्रेरणा देती है। ऐसा व्यक्ति यदि बुराई की ओर जाना भी चाहता है तो उसकी अन्तरात्मा उसे जाने नहीं देती। एक बार अच्छा चरित्र बन जाने पर व्यक्ति को कहीं भी छोड़ दिया जाए, वह अच्छे मार्ग पर ही चलता है। वस्तुतः विवेकानन्द के अनुसार शुभ–विचार अच्छे चरित्र की पूँजी है। उनका स्पष्ट कथन है। "यदि कोई मनुष्य अच्छे विचार सोचे तथा अच्छे कार्य करे, तो उससे इन संस्कारों का प्रभाव अच्छा ही रहेगा, और उसकी इच्छा न होते हुए भी वे उसे सत्कार्य करने के लिए विवश कर देंगे। जब मनुष्य इतने सत्कार्य और सत्चिन्तन कर चुकता है उसकी इच्छा न होते हुए भी उसमें सत्कार्य करने की एक अनिवार्य प्रवृति का उदय हो जाता है, उस समय फिर यदि वह दुष्कर्म करना भी चाहे, तो इन संस्कारों की समष्टि रूप उसका मन उसे वैसा करने से तुरन्त रोक देगा। उस समय वह अपने सत्संस्कारों के हाथ में एक कठपुतली की भाँति हो जाएगा। जब ऐसी स्थिति आ जाती है उस समय मनुष्य का चरित्र गठित अथवा प्रतिष्ठित कहलाने लगता है, यदि तुम वास्तव में किसी मनुष्य के चरित्र को जाँचना चाहते हो, उसके बड़े–बड़े कार्यों द्वारा उसकी जाँच मत करो।" स्वामी विवेकानन्द का यह कथन इस सत्य को अभिव्यक्त करता है कि बड़े–बड़े कामों के अवसर आने पर तो बहुत से छोटे व्यक्ति भी चरित्र के ऊँचे गुर दिखाते हैं, लेकिन यहाँ जो महत्त्वपूर्ण है वह इसका दृश्यवलोकन कि रोजाना के जीवन में उनका व्यवहार किस प्रकार का होता है। स्वामी विवेकानन्द इस तथ्य से शिक्षित करने का श्लाध्य कार्य किया है कि अपने आस–पास के लोगों से हमारा व्यवहार, हमारा उठना–बैठना, तौर–तरीके, सोच–विचार, बात–चीत का ढंग, दिनचर्या इन सभी बातों से हमारा चरित्र व्यक्त होता है। खेद का विषय है कि हमारी वर्तमान शिक्षा प्रणाली में इस प्रकार के चरित्र के विकास का कोई स्थान नहीं है। यही कारण है कि अत्यन्त ऊँची शिक्षा की डिग्री प्राप्त करने के बाद भी बौद्धिक, संवेगात्मक, शारीरिक और सामाजिक किसी भी दृष्टि से युवक–युवतियों में विशेष विकास दिखलाई नही पड़ता और वे बौने ही रह जाते हैं। ध्यातव्य है कि स्वामी विवेकानन्द ने तत्कालीन शिक्षा–प्रणाली की कटु आलोचना की और उसके दोषों का विश्लेषण किया। उन्होंने दिखाया कि वह शिक्षा–प्रणाली विशुद्ध भौतिक और जड़वादी दर्शन पर आधारित है। उसमें धार्मिक और आध्यात्मिक तत्त्व के लिए कोई स्थान नहीं है।

भगिनी निवेदिता (उनकी प्रधान शिष्या और उत्तराधिकारिणी) ने रामकृष्ण मिशन से अलग होते हुए यही तो बताया था कि स्वामी जी ने यह थे। वे युवकों को उस युग में 'करो या मरो का संदेश दे रहे हैं, वे बलिदानी भावना को जगा रहे हैं, उस समय के 'वंशीधारी नटवर कृष्ण को बिना कुछ कहे, उच्च पद से च्युत युत कर 'अट्टहासिनी, सिंहवासिनी, सर्वशत्रुविनाशिनी भवानी को उच्चासन पर प्रतिष्ठित कर रहे हैं, वे ललकार रहे हैं–"ऐ भारत, क्या तू दूसरों की संस्थाओं पर ही निर्भर रहेगा, क्या दूसरों की प्रशंसा पाने के लिए ही व्यग्र रहेगा और पद के अधिकार

के लिए ही मूढ़ दासता, घृणित नृशंसता में फैसा रहेगा? क्या तू इस प्रकार की निर्लज कायरता से वह स्वतंत्रता प्राप्त कर सकता है जिसे केवल वीर ही प्राप्त कर सकते हैं। यह न भूल कि तेरा समाज महानता की भ्रांति में भूला हुआ है. अपने गिरे, गरीब, अज्ञ, मेहतर, भंगी को न भूल, वे तेरे रक्त मांस हैं, वे तेरे भाई हैं। हे वीर, साहसकर, गर्वित हो कि तू भारतीय है और बड़े गर्व के साथ कह कि मैं भारतीय हूँ और हरेक भारतीय मेरा भाई है। भारत की भूमि मेरे लिए सर्वोच्च स्वर्ग है। भारत ही मेरी भलाई है।"[2]

"विश्वास करो, विश्वास करो, यह आदेश हुआ है। ईश्वर का यह आदेश हुआ है कि भारत उठकर रहेगा, गरीब जनता सुखी रहेगी, और खुशी मनाओ कि ईश्वर ने तुमको महान कार्य के लिए चुना है।" स्वामी विवेकानन्द नवयुवकों को गीता पढ़ने का उपदेश देते हैं लेकिन साथ ही यह भी कह उठते हैं कि गीता पढ़ने के पहिले अखाड़ों में जाओ, स्वास्थ्य सुधरो। 'भगवान के चरणों पर ताजे फूल ही चढ़ाए जाते हैं, बासी फूल नहीं।" "स्वामी जी के इस प्रकार के प्रवचनों से हम इतना ही अर्थ निकाल सकते हैं कि वे अपने भाषणों से भारत में क्रांति के लिए उपयुक्त जमीन जो तैयार कर रहे थे, किंतु वे कोई राजनैतिक नेता न थे। हम यह जरूर कह सकते हैं कि वे स्वयं अद्वैतवादी होते हुए भी, संसार को मिथ्या मानते हुए भी पहिले ऋषिवर थे, जिन्होने देश और समाज के बारे में सोचने और काम करने की प्रेरणा दी है। स्वामी विवेकानन्द की महत्ता इस बात में नहीं है कि उनके दार्शनिक विचार क्या थे, उनकी महत्ता यह है कि उन्होंने 'धर्म' को उपनिषद् दर्शन का आधर देकर एक ऐसा रूप देने का प्रयास किया था जो युग के अनुरूप हो और देश में प्रतिक्रिया के बजाय क्रांतिकारी ऊर्जा पैदा करे। उन्होंने भारतीय युवकों को पुराण पंथी मत–मतांतरों से हटाया और उपनिषद् धर्म पर बल दिया। कहा जाता है–अपने छात्र जीवन में वे उस समय के अनेक नवयुवकों की तरह नास्तिकतावाद की तरफ प्रवृत्त हो रहे थे, लेकिन स्वामी रामकृष्ण परमहंस देव के संसर्ग में आकर वे आध्यात्मवाद में डूब गए। स्वामी रामकृष्ण परमहंस देव के बारे में प्रसिद्ध है कि वे सभी धर्मों की एकता के प्रबलतम प्रतिपादक थे। कहा जाता है कि श्री रामकृष्ण परमहंस' देव ने हिंदू, मुसलमान, ईसाई सभी धर्मों की साधनाएँ करके अपने अनुभव से जाना था कि सारे धर्म एक ही सत्य को प्राप्त करने के विभिन्न मार्ग हैं, उन्होंने शायद समाधि अवस्था में हजरत मुहम्मद और प्रभू ईसामसीह का भी साक्षात्कार किया हो। स्वामी विवेकानन्द उनके परम शिष्य थे जिन्होंने समाज सेवा में धर्म की सार्थकता देखी।

अपने शिकागो भाषण में उन्होंने अत्यन्त प्रभावशाली ढंग से भारत को और उसके साथ ही भारत के उपनिषद् धर्म को गौरवान्वित किया था। उन्होंने हिन्दू धर्म को सब धर्मों का मूल माना था। उन्होंने हिंदू धर्म की सब से बड़ीसारा कार्य इसी लिए (क्रांतिकारी आंदोलन के लिए) ही तो किया था। कहा जाता है कि किसी ने उनके किसी शिष्य के विषय में उनसे शिकायत की थी कि वह बम बनाता है। तब स्वामी जी का जवाब था–चुप रहो, उसे बम बनाने दो, मैं जो भी कर रहा हूँ, इसी उद्देश्य को लेकर कर रहा हूँ, इसी उद्देश्य से मैं अपनी यात्राओं के दौर में प्रिंस क्रोपाट्किन और आयरलैण्ड के क्रांतिकारियों से मिलता रहा हूँ। स्वामी जी ने अपने इसी मन्तव्य को प्रसिद्ध क्रांतिकारी सखाराम देउसकर से प्रकट किया था। देउसकर ने बताया था कि स्वामी जी का यह मन्तव्य उनकी विदेश यात्रा के बाद 1897 में उनके इन शब्दों में व्यक्त हुआ थाः" "आगामी 50 वर्षों के लिए हमारा केवल एक ही विचार केन्द्र होगा और वह है–हमारी महान मातृभूमि भारत। दूसरे सब व्यर्थ के देवताओं को उस समय तक के लिए हमारे मन से लुप्त हो जाने दो... हम क्यों व्यर्थ इन देवताओं के पीछे दौड़ें और उस देवता की, उस विराट की पूजा क्यों न करें जिसे हम अपने चारो ओर देख रहे हैं (यानी भारत के जनगण)।""

निष्कर्ष

स्वामी विवेकानंद के जीवन काल में ही सारे देश में और खास कर बंगाल, महाराष्ट्र और पंजाब में राष्ट्रवाद (अखिल भारतीय राष्ट्रीयता), अंग्रेजी राज्य के विरूद्ध विद्रोह (क्रांति) और गुप्त समितियों की स्थापना के लिए जमीन तैयार हो चुकी थी। यह एक नए आंदोलन की शुरुआत थी इसी नई धारा को ही निम्न मध्यम वर्ग की धारा कहा जाता है। इसकी प्रचण्ड शक्ति और इसकी कमजोरियाँ या कमियाँ इसके मध्यमवर्गी चरित्र में समाई हैं।

भारतीय क्रांतिकारी आन्दोलन के उत्पन्न होने की कतिपय परिस्थितियाँ इसी दौरान में तत्कालीन स्थितियों

में अखिल भारतीय स्तर पर कांग्रेस के गठन और अधिवेशन के साथ शुरु हुए। किन्तु इनके मुलायम पिल–पिले प्रस्ताव से जो नकारात्मक सन्देश युवकों में जाने लगा, उससे भारतीय राजनीति में क्रान्तिकारी विचारों का आना अनिवार्य हो गया। भारत में क्रान्तिकारी भावना को जाग्रत करने में स्वामी विवेकानन्द का अप्रतीम योगदान था।

संदर्भ सूची

1. धर, शैलेन्द्र नाथ (1976) *ए कम्प्रेहेन्सिव बायोग्राफी ऑफ स्वामी विवेकानन्द,* विवेकानन्द प्रकाशन केन्द्र, पृ. 107–108।
2. माथुर, सावित्री (2007) *शिक्षा दर्शन,* आस्था प्रकाशन, जयपुर, पृ. 180–82।
3. पाण्डेय, रामशकल (2007) *शिक्षा के दार्शनिक सिद्धांत,* अग्रवाल प्रकाशन आगरा– 2, पृ. 206–209।
4. सक्सेना, एन. आर. स्वरूप (2009) *शिक्षा के दार्शनिक एवं समाज शास्त्रीय सिद्धांत,* आर. लाल बुक डिपो, मेरठ, पृ. 54–55।
5. सिंह विजेन्द्रपाल (1974) *भारत राष्ट्रवाद तथा आर्यसमाज,* लोकतंत्र समीक्षा, नयी दिल्ली, पृ. 57–59।

****